तेरहवां अध्याय

।। सारांश।।

पूर्ण परमात्मा की महिमा का वर्णन

विशेष :- श्रीमद्भगवत गीता का अध्याय 13 पूरा गीता ज्ञानदाता से अन्य समर्थ पूर्ण परमात्मा की महिमा से भरा है तथा अध्याय 12 में गीता ज्ञानदाता काल ब्रह्म ने अपनी महिमा बताई है।

।। क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ की परिभाषा।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 1 से 6 तक वर्णन है कि शरीर तथा इस शरीर में विकारों (काम, क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार आदि) तथा निराकार स्थिति में तथा दश इन्द्रियों तथा उनमें विद्यमान विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस व गंध आदि का विवरण है। जो इन सर्व कारणों को जानता है वह क्षेत्रज्ञ (पंडित) कहलाता है। गीता बोलने वाला कह रहा है कि क्षेत्रज्ञ भी मुझे जान।

पिंड का अर्थ है शरीर (क्षेत्र यहाँ शरीर को कहा है) तथा क्षेत्रज्ञ का अर्थ है शरीर के बारे में जानने वाला कि इसमें कमलों में कौन परमात्मा कहाँ-2 पर स्थित हैं तथा सुषमना द्वार कहाँ है? कमलों की जानकारी हो उसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ (पंडित) कहा है। इसका विवरण छन्दों (वेदों के मन्त्रों) में तथा बहुत से ऋषियों ने भी किया है।

।। आन उपासना को व्याभिचारिणी भक्ति बताना।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 7 से 11 तक कहा है कि जो कोई मान-सम्मान से दुःखी व सुखी न हो कर आडम्बर पूजा रहित, अहिंसा वादी, क्षमा स्वभाव युक्त गुरु जी की सेवा श्रद्धा भक्ति से करते हुए तथा शुद्धि पूर्वक अन्तःकरण में स्थित आत्मा को सही स्थिर करके तथा पूर्ण वैराग्य (प्रत्येक वस्तु से आसक्ति को हटा कर) होकर स्त्री-पुत्र-धन आदि में कोई आस्था न रहे और ममता, उपास्य देव व अनउपास्य देव की प्राप्ति या न प्राप्ति में ईश्वरिय रजा में अर्थात् इष्ट वादिता को छोड़ कर श्रेष्ठ ज्ञान के आश्रित समचित रह कर केवल मेरी अव्याभिचारिणी भक्ति {केवल एक इष्ट की उपासना, अन्य देवताओं की साधना को व्यभिचारिणी, वैश्या, जैसी बताई है जो एक पति पर स्थाई न होकर मन भटकाती है। वह कहीं आदर नहीं पाती} ***ऐसे एक पूर्ण परमात्मा को न भज कर सब की*** *पूजा को व्यभिचारिणी (वैश्या) जैसी भक्ति की संज्ञा दी है। आम व्यक्ति जो भक्ति भाव का न हो उनसे प्रेम न करना, आध्यात्म ज्ञान (भक्ति का ज्ञान) का नित्य चिंतन सर्व को तत्व ज्ञान रूप से देखना (समभाव रखना) यह तो श्रेष्ठ ज्ञान है। इसके विपरीत सब अज्ञान है। नशा करना, शराब, तम्बाखू, मांस, भांग प्रयोग करना, राग द्वेष रखना, आन उपासना (देवी-देताओं की पूजा, व्रत, तीर्थ, गंगा स्नान, गोवर्धन 'गिरीराज' की फेरी, मन्दिर में मूर्ति की पूजा) करना आदि अज्ञान कहा है तथा व्याभिचारिणी भक्ति कहा है।*

।। पूर्ण परमात्मा ही जानने व भक्ति योग्य है।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 12 से 18 में भगवान (काल-ब्रह्म) कह रहा है कि जो जानने योग्य है जिसको जान कर परमानन्द (अमर पद) को प्राप्त होता है, उस पूर्ण परमात्मा के ज्ञान को भली भाँति कहूँगा। वह अनादि वाला (जिसकी उत्पत्ति न हो) परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा/सतपुरुष) न तो सत और न असत कहा जा सकता है। {सत का अर्थ अक्षर (अविनाशी) तथा असत का अर्थ क्षर (नाशवान) ही कहा जा सकता है। क्योंकि यह परमात्मा तो अन्य ही है। जैसा गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 में कहा है कि दो भगवान हैं- एक क्षर (असत/नाशवान) और दूसरा अक्षर (अविनाशी/सत)।

फिर अध्याय 15 के 17वें श्लोक में कहा है कि वास्तव में अविनाशी तो इनसे भी भिन्न अन्य ही है जिसे अविनाशी परमेश्वर इस नाम से कहा गया है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। (कृप्या देखें गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16 व 17 में)}

वह सब ओर हाथ-पैर, तथा सिर-नेत्र वाला, सब ओर कान वाला है का तात्पर्य है कि वह सर्वव्यापक है अर्थात् उसकी पहुँच से तथा दृष्टि से कोई बाहर नहीं है। वही सबको अपने में समाये हुए स्थित हैं गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

जाके अर्ध रूम पर सकल पसारा, ऐसा पूर्ण ब्रह्म हमारा।

गरीब, अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का, एक रति नहीं भार। सतगुरु पुरुष कबीर हैं, कुल के सिरजन हार।।

भावार्थ :- संत गरीबदास जी ने परमात्मा के साथ ऊपर जाकर सर्व मण्डलों को देखा। परमात्मा की महिमा व लीला को देखा।

वही परमात्मा (पूर्णब्रह्म) सब इन्द्रियों के जानने वाला है। चूंकि उसी मालिक ने ब्रह्म (काल) को भी उत्पन्न किया। {गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में कहा है कि सर्व प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से, यज्ञ शुभकर्मो से होती है, कर्म ब्रह्म (काल) से हुए। ब्रह्म (काल) अविनाशी (परम अक्षर) भगवान से उत्पन्न हुआ। वही परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) सब यज्ञों में प्रतिष्ठित (विद्यमान है, पूज्य है, यज्ञों का फल देने वाला अधियज्ञ) है।} *वह इन्द्रियों से रहित आसक्ति रहित, सबका धारण पोषण करने वाला और सत्यलोक में रहते हुए तथा यहाँ अपनी निराकार शक्ति से सर्व का संचालक होते हुए गुणों को भोगने वाला, सर्व प्राणियों के अन्दर व बाहर और चर-अचर (सर्व का मूल कारण होने), निराकार शक्ति रूप में सूक्ष्म (अदृश्य) होने से न जाना जाने वाला (अविज्ञय) है अर्थात् उस अविनाशी परमात्मा (सतपुरुष) को कोई नहीं जान सकता। निराकार शक्ति से सर्व कार्य करने वाला होने से वह नजदीक से नजदीक सब प्राणियों के हृदय में (कार्य सिद्धि के लिए तुरन्त लाभ दे देता है, इसलिए दूर नहीं) और दूर सतलोक में भी है। {उस परमेश्वर (सतपुरुष) का भेद न होने से दूर भी है क्योंकि उसके दर्शन पूर्ण गुरु सतनाम व सारनाम दाता से नाम ले कर आजीवन गुरु मर्यादा में रह कर किए जा सकते हैं अन्यथा नहीं}*

एक सर्व शक्तिमान होने के कारण (अविभक्तम् = विभागरहित) उस परमेश्वर की शक्ति सर्व प्राणियों (असंख ब्रह्मण्डों में सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक) में स्थित है। वही (परमात्मा) जानने योग्य है जो सर्व ब्रह्मण्डों, जिसमें काल ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्मण्ड जिनमें श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री शिव के लोक सहित 14 लोक, स्वर्ग, मृत्यु तथा पाताल लोक और परब्रह्म के सात संख ब्रह्मण्डों सहित का पालन कर्त्ता और उत्पन्न करने वाला वह परमात्मा माया धारी काल से अन्य कहा जाता है।

ज्ञान सागर अति उजागर, निर्विकार निरंजनम। ब्रह्म ज्ञानी महा ध्यानी, सत सुकृत दुःख भंजनं।

आदरणीय गरीबदास जी महाराज अपनी अमृत वाणी 'ब्रह्मवेदी' में उसी पूर्ण परमात्मा के विषय में कहा है। गीता अध्याय 13 श्लोक 17 में कहा है कि वही पूर्ण परमात्मा सबके हृदय में विशेष रूप में स्थित है। जैसे सूर्य एक स्थान पर होते हुए भी सर्व प्राणियों को अपने साथ ही दिखाई देता है, परन्तु आँखे उसे देख सकती हैं इसलिए कह सकते हैं कि सूर्य आँखों में ही विशेष रूप से विद्यमान है क्योंकि आँखें ही प्रकाश देख सकती हैं। जो ऊष्णता (सूर्य) का विशेष रूप में गुण है। उसे केवल महसूस किया जा सकता है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सत्यलोक में रह कर भी प्रत्येक प्राणी के हृदय कमल में जीव के साथ सूर्य की ऊष्णता की तरह अपनी निराकार शक्ति द्वारा अभेद भी रहता है।

गीता अध्याय 13 श्लोक 18 में क्षेत्र (शरीर) तथा जानने योग्य (परमात्मा-पूर्णब्रह्म) उत्तम ज्ञान संक्षेप में कहा है। (मद्भक्त) - मतभक्त विचारों पर चलने वाला भक्त उसी विचारों वाला हो जाता है। यदि श्रीमद्भगवद् का सन्धि छेद करें तो श्री-मत-भगवत्-गीता। यहाँ 'श्रीमत' का अर्थ है कि अति उत्तम विचार (मत्) जो भगवान ने दिए, गीता का अर्थ ज्ञान है। इसलिए श्रीमद्भगवद् गीता का अर्थ है जो श्रेष्ठ विचार भगवान ने स्वयं दिए वह ज्ञान है। मद्भक्त का भावार्थ 'मत (विचार) भक्त (साधक)' बनता है अर्थात् ऊपर के ज्ञान (मत) विचारों को जान कर वह मद्भक्त उन्हीं विचारों (मत वाला) के भाव वाला हो जाता है। प्रकरण वश मत् का अर्थ मेरा भी होता है जो भगवत भक्त इस उत्तम ज्ञान को जान कर उन्हीं विचारों अनुरूप हो जाता है तथा काल (ब्रह्म) के जाल से निकल जाता है। यहां तक कि गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 24 में कहा है कि बुद्धिहीन मेरे अनुत्तम (गन्दे) अटल (अविनाशी) काल भाव कि मैं अदृश्य हूँ कभी आकार में सर्व के समक्ष नहीं आता को नहीं जानते। इसलिए मुझे व्यक्ति (कृष्ण) रूप में ही समझते हैं अर्थात् मैं व्यक्ति (आकार) रूप में कभी नहीं आता।

अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने इस श्लोक के टीका में जो अनुत्तम शब्द है का अर्थ किसी ने ज्यों का त्यों लिख दिया - अनुत्तम = अनुत्तम। किसी-किसी ने अनुत्तम = सर्व श्रेष्ठ किया है। उत्तम का अर्थ अच्छा (श्रेष्ठ) और अनुत्तम का अर्थ बुरा (गन्दा) अर्थात् अश्रेष्ठ हुआ।

विशेष :-- कुछ श्रद्धालु कहते हैं कि समास में अनुत्तम का अर्थ उत्तम ही होता है। यदि ऐसा माने तो गीता ज्ञान दाता ने पूर्ण शान्ति तथा स्थाई स्थान यानि अमर लोक की प्राप्ति के लिए किसी अन्य परमात्मा की शरण में जाने के लिए क्यों कहा प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 46, 62, 66 अध्याय 15 श्लोक 4 तथा अपने से अन्य परमात्मा के विषय में ज्ञान किसलिए बताया है। प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 12 से 17,22 से 24, 27-28,30-31-34 अध्याय 15 श्लोक 16-17 अध्याय 5 श्लोक 6,10,13 से 21 तथा 24-25-26 अध्याय 3 श्लोक 15-19 अध्याय 6 श्लोक 7,19-20-25-26-27 अध्याय 4 श्लोक 31-32 अध्याय 17 श्लोक 23-25-27 अध्याय 8 श्लोक 1-3,8 से 10,17 से 22

यह सब पूर्ण ज्ञान न होने के कारण तथा भावना वश इष्टवादिता वश होकर स्वयं भी अंधेरे में तथा पाठक भी अज्ञान को ही प्राप्त होते हैं। अर्थ का अनर्थ किया है। अनुत्तम का सर्वश्रेष्ठ अर्थ किया है। इसी प्रकार गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में व्रज का अर्थ आना किया है जबकि व्रज का अर्थ जाना होता है। ऐसे अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने अर्थ का अनर्थ किया है।

।। पूर्ण परमात्मा तथा राष्ट्री प्रकति दोनों अनादि ।।

गीता अध्याय 13 श्लोक 19 में कहा है कि राष्ट्री प्रकति (प्रथम माया अर्थात् जिसे राजेश्वरी शक्ति भी कहते हैं, जिससे परमेश्वर ने सर्व ब्रह्मण्डों को ठहराया है) और पुरुष (पूर्ण परमात्मा) इन दोनों को ही अनादि (सदा रहने वाला और जिसकी उत्पत्ति न हुई हो) जान। चूंकि पुरुष (परमात्मा-पूर्णब्रह्म) पहले अनामी लोक में अकेला रहता था। सर्व आत्माऐं प्रभु के शरीर में समाई थी। बाद में कविर्देव पूर्ण परमात्मा ने नीचे के तीन लोक अगम लोक, अलख लोक तथा सतलोक की रचना अपनी शब्द शक्ति से की तथा स्वयं भी अपनी शब्द शक्ति से सतपुरुष सतलोक में स्वयं प्रकट हुआ, इसीलिए स्वयंभू कहलाता है तथा आदि माया (प्रकति) को परम हंस से हंस शब्द शक्ति से बनाया तथा सर्व जीव प्रकति में प्रवेश किए। इसलिए जब परब्रह्म (अक्षर पुरुष) महाप्रलय करता है उस समय ज्योति निरंजन औंकार को सर्व लोकों समेत समाप्त करेगा। उस समय प्रकति को उसी रूप में सूक्ष्म बना कर परब्रह्म लोक में रखा जाता है और ब्रह्म (ज्योति निरंजन काल) बीज रूप में रखा जाता है तथा इसकी उत्पत्ति फिर होती है। यही प्रकति लड़की रूप में इसके साथ होती है। काल (ब्रह्म) के नीचे के लोक रचे जाते हैं। तीन अच्छी आत्माओं (श्रेष्ठ आत्माओं) को ब्रह्म (ज्योति निरंजन) भगवान अपनी प्रकति (अष्टंगी) से रति क्रिया करके उत्पन्न करता है उनको श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु, श्री महेश की उपाधी देता है। ये नई श्रेष्ठ आत्माएँ होती है। पहले वाले विष्णु, ब्रह्मा, शिव चौरासी लाख योनियों में चले जाते हैं।

क्योंकि यही काल भगवान ब्रह्म लोक में तीन रूपों (महाविष्णु- महाब्रह्मा-महाशिव) में रहता है। और वहां पर तीनों बच्चों की उत्पत्ति करके उन्हें चेतनाहीन रख कर पालन करता रहता है। जवान होने पर अलग-2 जगह पर रख देता है। जिससे इन्हें मालूम ही नहीं कि हम कहाँ से आए। इसलिए इसी अध्याय के श्लोक 19 में प्रकति व पूर्ण परमात्मा को अनादि कहा है और विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेष) को, गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) को भी प्रकति (आदिमाया- प्रकति) से उत्पन्न जान।

गीता अध्याय 13 श्लोक 20 में कहा है कि जगत की उत्पत्ति का कारण तथा कर्म (कार्य) के लिए प्रकति ही मुख्य है तथा पुरुष (सतपुरुष) अपने भक्त का सुख-दुःख का कारण कहा जाता है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान व सर्व जीवों में स्थित होते हुए भी उन जीवों के कष्ट को बिना नियमित साधना (पूर्ण गुरु जो सतनाम व सारनाम देता है। उससे दीक्षा लेकर साधना किए बिना) दूर नहीं कर सकता। जीव को शक्ति दे कर जीव स्थिति में चला रहा वही पूर्ण परमात्मा इस सुख-दुःख का कारण कहा है।

गीता अध्याय 13 श्लोक 21 में कहा है कि ''परम अक्षर ब्रह्म'' (सतपुरुष) सूर्य की तरह सर्वव्यापक होने से प्रकति में भी स्थित है। प्रकति से उत्पन्न तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तथा तमगुण शिव जी की उपासना का भी भोग लगाने वाला मूल परमात्मा ही है। सर्व को कर्म आधार पर नियमानुसार फल देने वाला भी वही पूर्ण ब्रह्म ही है। इसलिए गुणों का भोक्ता कहा है। गुणों का संग (तीनों देवताओं की उपासना) करने से अच्छी-बुरी योनियों में (प्राणी) जन्म लेते हैं। गीता अध्याय 13 श्लोक 22 में कहा है कि यही सतपुरुष (पूर्ण परमात्मा) उपद्रष्टा (सब को बाहर-भीतर से देखने वाला) तथा अनुमन्ता (कर्म अनुसार कर्म की अनुमति देने वाला), धारण करने वाला और सर्वस्वा होने के कारण महेश्वर (पूर्णब्रह्म) है जो इस शरीर (क्षेत्र) में भी है। इसी

को क्षेत्री व शरीरी भी कहा है। उसे परमात्मा (अकाल पुरुष) कहा गया है।

❖ *अध्याय 13 श्लोक 23 में कहा है कि इस प्रकार जो कोई परमात्मा (पूर्णब्रह्म) तथा प्रकति (अष्टंगी) को गुणों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) सहित ठीक से जान लेता है। वह सब प्रकार से पूर्णब्रह्म की उपासना करके वर्तमान में भी फिर नहीं जन्मता अर्थात् उसी जीवन में अपनी भक्ति को सुचारू करके (पूर्ण गुरु तत्वदर्शी संत की तलाश करके) मुक्त हो जाता है।*

''अन्य अनुवादकर्ताओं का गोल-माल''

गीता अध्याय 13 श्लोक 22 में मेरे से अन्य सब अनुवादकों ने गलत अनुवाद किया है। लिखा है कि देह यानि शरीर में स्थित यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। यही ब्रह्मादि का भी स्वामी होने से महेश्वर है। सबका धारण-पोषण करने वाला होने से भर्ता है, जीव रूप में भोक्ता है।

पाठकजन विचार करें :- अनुवादक ने आत्मा को ब्रह्मादिक यानि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का भी स्वामी बताया है जो आध्यात्मिक ज्ञान का टोटा स्पष्ट दिखाई देता है। देखें इस अनुवादक जयदयाल गोयन्दका द्वारा अनुवादित गीता अध्याय 13 श्लोक 22 की फोटोकॉपी :-

॥ श्रीहरि: ॥ 17

श्रीमद्भगवद्गीता

पदच्छेद, अन्वय और

साधारण भाषाटीकासहित

सं० २०७१ इकहत्तरवाँ पुनर्मुद्रण १०,०००
कुल मुद्रण ९,२०,५००

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : booksales@gitapress.org website : www.gitapress.org

अध्याय १३

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥ २२॥

उपद्रष्टा, अनुमन्ता, च, भर्ता, भोक्ता, महेश्वरः, परमात्मा, इति, च, अपि, उक्तः, देहे, अस्मिन्, पुरुषः, परः॥ २२॥

अस्मिन् = इस
देहे (स्थितः) अपि = देहमें स्थित
पुरुषः = यह आत्मा (वास्तवमें)
परः (एव) = परमात्मा[३] ही है। (वही)
उपद्रष्टा = साक्षी होनेसे उपद्रष्टा
च = और
अनुमन्ता = यथार्थ सम्मति देनेवाला होनेसे अनुमन्ता,
भर्ता = सबका धारण-पोषण करनेवाला होनेसे भर्ता,
भोक्ता = जीवरूपसे भोक्ता,
महेश्वरः = ब्रह्मा आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर
च = और
परमात्मा = शुद्ध सच्चिदानन्दघन होनेसे परमात्मा—
इति = ऐसा
उक्तः = कहा गया है।

यह फोटोकॉपी गीता अध्याय 13 श्लोक 22 की है जिसका अनुवाद जयदयाल गोयन्दका ने किया है तथा गीता प्रैस गोरखपुर से प्रकाशित है।

इसमें स्पष्ट है कि अनुवादक को तत्वज्ञान का अभाव रहा है। जिस कारण से गलत अनुवाद किया है कि इस देही (शरीर) में स्थित (पुरूषः) आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। यही सबका पालन-पोषण करने वाला ब्रह्मादिक (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) का भी स्वामी होने से महेश्वर तथा शुद्ध सच्चिदानंद होने से (परमात्मा) परमात्मा ऐसा कहा गया है। यह अनुवाद पूर्ण रूप से गलत है। कष्ण कपा मूर्ति श्री श्री मद् ए.सी. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा अनुवादित तथा भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित में इस अध्याय 13 के श्लोक 22 का अनुवाद ठीक किया है। इन्होंने इस श्लोक की सँख्या 23 लिखी है, मूल पाठ वही है।

गीतोपनिषद्

श्रीमद्भगवद्गीता

यथारूप

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

अध्याय १३ श्लोक २३ ४३७

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥ २३॥

उपद्रष्टा—साक्षी; **अनुमन्ता**—अनुमति देने वाला; **च**—भी; **भर्ता**—स्वामी; **भोक्ता**—परम भोक्ता; **महा-ईश्वरः**—परमेश्वर; **परम्-आत्मा**—परमात्मा; **इति**—भी; **च**—तथा; **अपि**—निस्सन्देह; **उक्तः**—कहा गया है; **देहे**—शरीर में; **अस्मिन्**—इस; **पुरुषः**—भोक्ता; **परः**—दिव्य।

तो भी इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्ता है, जो ईश्वर है, परम स्वामी है और साक्षी तथा अनुमति देने वाले के रूप में विद्यमान है और जो परमात्मा कहलाता है।

यह फोटोकॉपी गीता अध्याय 13 श्लोक 22/23 की है। अनुवादक ने अनुवाद कुछ-कुछ ठीक किया है, कुछ गलत किया है। जो गलत किया है, उस पर प्रकाश डालता हूँ। अनुवाद में लिखा है कि इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्ता है जो ईश्वर है। शब्दार्थ में ''पुरूषः'' का अर्थ भोक्ता किया है और ''परः'' का अर्थ दिव्य किया है जबकि ''पुरूषः'' का अर्थ परमात्मा है और परः का अर्थ अन्य यानि दूसरा है। अनुवाद में भी गलत किया है। अनुवाद में यह तो स्पष्ट है कि जीवात्मा से अन्य परमात्मा भी शरीर में है। यह दास (रामपाल दास यानि अनुवादक व लेखक) भी यही कहता है कि जीवात्मा के साथ परम अक्षर ब्रह्म की शक्ति अभेद है। परंतु अन्य अनुवादक तत्वज्ञान से परिचित नहीं हैं। जिस कारण से कोई न कोई गलती कर ही देते हैं। उदाहरण के लिए = जयदयाल गोयन्दका ने तो पूर्ण रूप से इस अध्याय 13 के श्लोक 22 का अनुवाद गलत किया है जो आप जी ने इस श्लोक के अनुवाद की फोटोकॉपी में देख लिया है। एस्कोन वाले ने भी शब्दों का अर्थ गलत किया है। जैसे मूल पाठ में स्पष्ट है कि शरीर में आत्मा के साथ अन्य परमात्मा है (अस्मिन देहे) इस शरीर में (परः पुरूषः) अन्य परमेश्वर है जो (उपद्रष्टः, अनुमन्ता, भर्ता, भोक्ता महेश्वरः परमात्मा इति च अपि उक्तः) जीवात्मा के प्रत्येक कार्य पर दष्टि रखने से उपदष्टा किसी भी कार्य करने के विचार के समय अपनी प्रेरणा से अनुमति देने वाला और सर्व का धारण-पोषण करने से भर्ता, धार्मिक अनुष्ठानों में भोग लगाने वाला होने से भोक्त और ब्रह्मादिक (ब्रह्मा, विष्णु, शिव को ब्रह्मादिक कहा जाता है जैसे ब्रह्मा के चारों पुत्रों को सनकादिक कहते हैं) तथा क्षर पुरूष यानि काल ब्रह्म तथा अक्षर पुरूष का भी स्वामी यानि ईश होने से महेश्वर तथा आत्मा से भी श्रेष्ठ होने से परमात्मा कहा गया है। यथार्थ अनुवाद यह है। एस्कोन वालों ने ''पुरूषः परः'' का अर्थ

गलत किया है जो इस प्रकार है :- पुरूषः का अर्थ भोक्ता किया है, परः का अर्थ दिव्य किया है जो गलत है। अनुवाद में भी गलत लिखा है कि ''इस शरीर में एक अन्य दिव्य भोक्ता है जो ईश्वर है।'' जबकि यथार्थ अनुवाद ऊपर मेरे द्वारा किया गया है। इस प्रकार गीता का यथार्थ भावार्थ गीता पाठकों तक नहीं पहुँच पाया जिसकी पूर्ति इस पुस्तक ''गरिमा गीता की'' में की गई है।

।। मनमुखी साधना व्यर्थ ।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 24 में कहा है कि आत्मतत्व में पहुँचने के लिए कुछ तो आत्मध्यान (मैडिटेशन) के द्वारा दूसरे कुछ ज्ञान योग (केवल कीर्तन व पाठ करके) से, दूसरे जो वे कर्मयोग से आत्म दर्शन करते हैं। क्योंकि परमात्मा पूर्णब्रह्म को पाने के लिए आत्म शुद्धि की जाती है। उसके तरीके ऊपर वर्णन किए हैं। आत्म शुद्धि तो समझो खेत (क्षेत्र) संवार दिया। यदि उसमें सत्यनाम बीज नहीं बोया तथा सारनाम रूपी कलम नहीं चढ़ाई तो भी केवल आत्म शुद्धि से भी बात नहीं बनेगी अर्थात् मुक्ति नहीं। इसलिए काल भगवान सत्यनाम की जानकारी नहीं देता। केवल एक अक्षर औंकार (ऊँ) मन्त्र का जाप बताता है। यह मन्त्र (बीज) है। इस मन्त्र से केवल स्वर्ग-महास्वर्ग तथा फिर जन्म-मरण ही प्राप्त हो सकता है अर्थात् पूर्ण मुक्ति नहीं। यहाँ पर ज्ञान तो दे दिया आम के पौधे (पूर्णब्रह्म-पूर्णपुरुष) का परंतु बीज (मन्त्र-नाम) दे दिया बबूल (काल-ब्रह्म) का। इस लिए जीव आम का फल (पूर्ण मुक्ति) प्राप्त नहीं कर पाते तथा अंत में तप्त शिला पर काल भूनता है उस समय पछताते हैं। फिर क्या बने?

कबीर, करता था तो क्यों रह्या, अब कर क्यों पछताय। बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय।।

विशेष :-- गीता अध्याय 13 श्लोक 24 का भावार्थ है कि जो सांख्य योगी अर्थात् तत्वज्ञानी शिक्षित व्यक्ति हैं वे अपनी साधना तत्वज्ञान के आधार से दूध और पानी छानकर प्रारम्भ करते हैं। दूसरे कर्म योगी अर्थात् जो ज्ञानी व शिक्षित हैं। उनको शिक्षित व्यक्ति जैसी सलाह देता है वे उनके कहने पर कर्मयोग आधार से अर्थात् ज्ञान की कांट छांट न करके भक्ति कर्म में लग जाते हैं। वे कर्मयोगी कार्य करते-2 साधना करते हैं। गीता अध्याय 5 श्लोक 4-5 में कहा है कि दोनों प्रकार के साधक (सांख्य योगी व कर्मयोगी) समान भक्ति फल प्राप्त करते हैं।

।। भक्ति के लिए अक्षर ज्ञान आवश्यक नहीं ।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 25 में कहा है कि परंतु इनसे अन्य भक्त स्वयं विद्वान न होने से दूसरों से सुनकर उपासना करते हैं तथा वे सुन कर मार्ग पर लगने वाले (श्रुति परायणः) भी यदि उनकी भक्ति पूर्ण संत के अनुसार है (सतनाम व सारनाम की करते हैं) तो मत्यु (जन्म-मरण) से तर जाते हैं मुक्त हो जाते हैं, चाहे वे विद्वान भी न हों अर्थात् भक्ति मुक्ति के लिए पढ़ा लिखा अर्थात् विद्वान होना आवश्यक नहीं है। उसकी साधना शास्त्र विधि अनुसार होनी चाहिए।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 26 में वर्णन है कि हे अर्जुन! जितने भी स्थावर जंगम जीव हैं वे क्षेत्र (शरीर रूप खेत) तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) के संयोग से ही उत्पन्न समझ। क्योंकि इस मिट्टी आदि पांच तत्व के पुतले को पूर्ण पुरुष सतपुरुष की शक्ति ही चला रही है तथा काल अपनी प्रकति (दुर्गा) के संयोग से जीव उत्पन्न करता है।

।।पूर्ण ज्ञानी वही है जो केवल पूर्ण परमात्मा को अविनाशी मानता है।।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 27 का भाव है कि परमात्मा (पूर्णब्रह्म) को जो अविनाशी रूप से

जानता है वह (साधक) सही जानने वाला है कि जीव स्थूल शरीर में नष्ट होता नजर आता है परंतु सूक्ष्म शरीर में जीवित रहता है। वह भी परमात्मा की शक्ति से ही जीवित है। उसकी शक्ति के बिना जीव निष्क्रिय है। जैसे देवी भागवत् महापुराण में प्रकृति देवी (अष्टंगी) कहती है कि हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश! तुम और सर्व प्राणी मेरी शक्ति से चल रहे हो। यदि मैं अपनी शक्ति वापिस ले लूं तो तुम, जगत तथा सर्व प्राणी शुन्य (असहाय) हो जायेंगे। देखें देवी भागवद् महापुराण। फिर इस प्रकृति (माया) को शक्ति सतपुरुष से ही प्राप्त है। इसलिए शक्ति का मूल श्रोत पूर्ण परमात्मा होने का कारण कहा है कि उसी शक्ति से क्षेत्रज्ञ (काल) के द्वारा जीव उत्पन्न होते हैं।

गीता अध्याय 13 के श्लोक 28 में कहा है कि जो साधक उसी परमात्मा को समान भाव से सर्वत्र स्थित मानता है वह आत्मघात नहीं कर रहा है। (सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसकी ऊष्णता निराकार रूप में सर्वव्यापक है)सत्य ज्ञान होने से सही मार्ग पर लग कर पूर्ण गुरु (जो पूर्णब्रह्म के सतनाम व सारनाम का दाता है) से नाम ले कर मुक्त हो जाता है। इससे परमगति (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त होता है। क्योंकि पूर्ण परमात्मा सतपुरुष की भक्ति न करके तीन लोक (ब्रह्मा, विष्णु, शिव व माई-प्रकृति व काल-ब्रह्म) की साधना से जीव की लख चौरासी जूनियों में भ्रमणा-भटकणा नहीं मिटती। इसलिए यह साधना व्यर्थ है। यह काल साधना तो सर्व जीव बहुत बार कर चुके हैं। इन्द्र, कुबेर, ईश (भगवान पद ब्रह्मा, विष्णु, शिव) जैसी अच्छी उपाधी काल (ब्रह्म) साधना से अनेकों बार प्राप्त की। परंतु पूर्ण संत न मिलने से पूर्ण परमात्मा (परमेश्वर) का ज्ञान नहीं हुआ। इसलिए उत्तम साधना नहीं मिली। पूर्ण मुक्ति (परमगति) नहीं हुई। अध्याय 13 में सारे अध्याय में पूर्ण परमात्मा की जानकारी दी है कि उस परमात्मा की भक्ति से जीव पूर्ण मोक्ष अर्थात् अनादि मोक्ष प्राप्त कर सकता है। परंतु गीता जी में पूर्ण पुरुष की भक्ति कैसे करें? यह जानकारी कहीं नहीं। वह जानकारी केवल पूर्ण संत (सतगुरु) अर्थात् तत्वदर्शी संत ही दे सकते हैं। जिसका विवरण गीता अध्याय 4 मंत्र 34 में है। इसलिए गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 28 में कहा है कि जिसको उस परमात्मा की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया वह (आत्मना आत्मानम्, न हिनस्ति) आत्म घात से बच गया। इसमें स्पष्ट है कि काल (ब्रह्म) स्वयं कहता है कि यदि मेरी भक्ति साधक करता है तो कुछ समय के लिए जन्म-मरण (कल्प अंत तक) मैं भी समाप्त कर सकता हूँ। मेरी भक्ति भी तीनों गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण) से ऊपर उठ कर (अर्थात् इन भगवानों की भक्ति को भी त्याग कर) केवल एक अक्षर ''ऊँ'' का जाप करें। परंतु पूर्ण मुक्ति के लिए उस परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) की भक्ति पूर्ण आचार्य (गुरु) से नाम मन्त्र लेकर उसकी सेवा श्रद्धा से करके प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्वसिद्ध है कि जो पूर्णब्रह्म की भक्ति करता है वह आत्मघात (आत्म हत्या) से बच जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इस भक्ति के अतिरिक्त जो आन देव (ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी-देवताओं, जिनकी भक्ति तो पहले ही ब्रह्म साधना में भी बाधक है इससे आगे ब्रह्म-काल) की साधना करना भी आत्मघात के समान अर्थात् व्यर्थ है। इसी का प्रमाण यजुर्वेद अध्याय 40 में भी है। कबीर साहेब कहते हैं -

कबीर, जो यम (काल) को कर्त्ता (भगवान) भाखै (कहै)। तजै सुधा (अमृत) नर विष (जहर) को चाखै।।

इस वाणी का भावार्थ है कि जो कोई साधक ब्रह्म (काल/यम) को भगवान जान कर पूजता है तथा वह अमृत (सतपुरुष) को छोड़ कर जहर (काल की साधना से जन्म-मरण, चौरासी लाख योनियों की पीड़ा रूपी जहर) को चाख रहा है। अर्थात् पूर्ण परमात्मा के पूर्ण मोक्ष का आनन्द न मिल कर काल (ब्रह्म) साधना से होने वाले जन्म-मरण व अन्य प्राणियों के कष्टमय जीवन को

आनन्द समझ रहा है। इसलिए उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) की साधना करो तथा सतलोक में जहाँ सुख का सागर है अर्थात् कोई कष्ट नाम की वस्तु नहीं है, न जन्म-मरण है, वहाँ चलो!

।। शब्द ।।

मन तू चलि रे सुख के सागर। जहां शब्द सिंध रत्नागर।।टेक।।
कोटि जन्म जुग भरमत हो गये, कुछ नहीं हाथि लग्या रे।
कूकर (कुत्ता) शुकर (सूअर) खर (गधा) भया बौरे, कौआ हंस बुगा रे।।1।।
कोटि जन्म जुग राजा किन्हा, मिटि न मन की आशा।
भिक्षुक होकर दर–दर हांढा, मिल्या न निरगुण रासा।।2।।
इन्द्र कुबेर ईश की पदवी, ब्रह्मा वरूण धर्मराया।
विष्णु नाथ के पुर कूं पहुँचा, बहुरि अपूठा आया।।3।।
असंख जन्म जुग मरते होय गये, जीवित क्यौं न मरै रे।
द्वादश मधि महल मठ बौरे, बहुरि न देह धरै रे।।4।।
दोजिख भिसति सबै तैं देखें, राज पाट के रसिया।
त्रिलोकी से त्रिपति नांहि, यौह मन भोगी खसिया।।5।।
सतगुरु मिलैं तो इच्छा मेटैं, पद मिलि पदह समाना।
चल हंसा उस देश पठाऊं, आदि अमर अस्थाना।।6।।
च्यारि मुक्ति जहां चंपी करि हैं, माया होय रही दासी।
दास गरीब अभै पद परसै, मिले राम अविनासी।।7।।

भावार्थ :- कपया इस शब्द को ध्यान पूर्वक विचारें। इसमें आदरणीय गरीबदास जी महाराज कह रहे हैं कि हे मन! तू सुख के सागर सतलोक चल। इस काल (ब्रह्म) लोक में असंखों जन्म मरते-जन्मते हो गए। अभी तक कुछ हाथ नहीं आया। चौरासी लाख योनियों का कष्ट करोड़ों बार उठाया। कुकर (कुत्ता) सुकर (सुअर) खर (गधा) जैसी कष्टमई योनियों में तंग पाया। आगे कहा कि ब्रह्म (काल) साधना करके ऊँ जाप, तप, यज्ञ, हवन, दान आदि करके राजा बना। इन्द्र (स्वर्ग का राजा) बना और ब्रह्मा-विष्णु-शिव के उत्तम पद पर भी रहा। कुबेर (धन का देवता) बना, वरुण (जल का देवता) भी बना और उत्तम लोक विष्णु जी के लोक में भी विष्णु (कष्ण, राम आदि) की साधना करके कुछ समय पुण्य कर्मों के भोग को भोगकर वापिस जन्म-मरण, नरक के चक्र में गिर गया।

यदि तत्वदर्शी संत सतगुरू मिल जाता तो काल लोक को असार तथा सत्यलोक को सर्व सुखदायी का ज्ञान करवाकर काल ब्रह्म के लोक की सर्व नाशवान वस्तुओं की इच्छा समाप्त करता। स्वर्ग का राजा यानि देवराज इन्द्र भी मरता है। फिर गधा बनता है तो पथ्वी के राज को प्राप्त करके भी राज भोगकर राजा गधा बनता है। इस प्रकार के ज्ञान से पूर्ण परमात्मा की भक्ति से साधक का मन काल ब्रह्म के लोक से हटकर परम अक्षर ब्रह्म यानि सतपुरूष में तथा उसके सनातन परम धाम की प्राप्ति की हृदय से इच्छा करता है। इस कारण से *''जहाँ आशा तहाँ बासा होई, मन कर्म वचन सुमरियो सोई।''*

भावार्थ है कि साधक की आस्था जिस प्रभु तथा लोक को प्राप्त करने की होती है तो उसी को प्राप्त करता है। उसी लोक को प्राप्त करने की साधना करके उसी में निवास करता है। इसलिए उसी का स्मरण मन-कर्म-वचन से करना चाहिए। तत्वज्ञान से साधक की आस्था सतपुरूष (परमेश्वर) तथा उसके सतलोक को प्राप्त करने की होती है। जिस कारण से अमर लोक प्राप्त होता है। फिर उस साधक की कभी मत्यु नहीं होती। वह परम अक्षर ब्रह्म यानि अविनाशी राम

कबीर मिल जाता है। ऐसी सच्चाई तत्वदर्शी संत बताता है। सत्यलोक में जो चार मुक्तियों का सुख है। वह सदा बना रहता है। काल ब्रह्म के लोक में एक दिन समाप्त होता है। साधक नरक में भी जाता है। अन्य प्राणियों के शरीरों में भी कष्ट भोगता है। सतलोक में सदा सुखी रहता है।

।। देवी-देवताओं का राजा इन्द्र भी गधा बनता है।।

एक समय मार्कण्डेय ऋषि निरंकार ईश्वर मान कर ब्रह्म (काल) की कई वर्षों से साधना कर रहे थे। इन्द्र (जो स्वर्ग का राजा है) को चिंता बनी कि कहीं यह साधक अधिक तप करके इन्द्र की पदवी प्राप्त न करले। चूंकि इन्द्र की पदवी (पोस्ट) अधिक यज्ञ करके या अधिक तप करके प्राप्त की जाती है। उसका (इन्द्र का) शासन काल बहत्तर चौकड़ी (चतुर्युगी) युग का होता है। उसके शासन काल के दौरान यदि कोई साधक इन्द्र की पदवी पाने योग्य साधना कर लेता है तो उस वर्तमान इन्द्र (स्वर्ग के राजा) को बीच में ही पद से हटा कर नए साधक को इन्द्र पद दे दिया जाता है। इसलिए इन्द्र को यह चिंता बनी रहती है कि कोई तप या यज्ञ करके मेरे राज्य को न छीन ले। इसलिए वह उस साधक का तप या यज्ञ बीच में खण्ड करवा देता है।

इसी उद्देश्य से इन्द्र ने मार्कण्डेय ऋषि के पास एक उर्वशी स्वर्ग से भेजी। उर्वसी ने अपनी सिद्धि शक्ति से सुहावना मौसम बनाया तथा खूब नाची-गाई। अंत में निवस्त्र हो गई। तब मार्कण्डेय ऋषि ने कहा कि हे बहन! हे बेटी! हे माई! आप यहाँ किस लिए आई? इस पर उर्वसी ने कहा कि हे मार्कण्डेय गुसांई! आप जीत गए मैं हार गई। आप एक बार इन्द्र लोक में चलो नहीं तो मेरा मजाक करेंगे कि तू हारकर आई है। मार्कण्डेय बोले मैं जहाँ की साधना (महास्वर्ग-ब्रह्म लोक की साधना) कर रहा हूँ। वहाँ पर जो नाचने वाली तथा गाने वाली हैं उनके पैर धोने वाली तेरे जैसी सात-2 बान्दियाँ हैं। तेरे को क्या देखूं। तेरे से अगली कोई अधिक सुन्दर हो उसे भेज दे। इस पर उर्वशी ने कहा कि इन्द्र की पटरानी मैं ही हूँ अर्थात् मेरे से सुन्दर कोई नहीं है।

इस पर मार्कण्डेय गोंसाई बोले कि जब इन्द्र मरेगा तब क्या करेगी? उर्वशी बोली मैं चौदह इन्द्र वरूंगी अर्थात् मैं तो एक बनी रहूँगी मेरे सामने चौदह इन्द्र अपनी-2 इन्द्र पदवी भोग कर मर जाएंगे। मेरी आयु स्वर्ग की पटरानी के रूप में है। (72 गुणा 14) 1008 चतुर्युग तक अर्थात् एक ब्रह्मा के दिन (एक कल्प) की आयु एक इन्द्र की पटरानी शची की है।

मार्कण्डेय ऋषि बोले चौदह इन्द्र भी मरेंगे तब क्या करेगी? उर्वसी बोली जितने इन्द्र मैं भोगुंगी वे गधे बनेंगे तथा मैं गधी बनूंगी। मार्कण्डेय ऋषि बोले, हे सुंदरी! जिस लोक का राजा तो गधा बनेगा और रानी गधी बनेगी, ऐसे लोक में चलने के लिए क्यों कह रही है?

उर्वशी बोली, मेरी इज्जत रखने के लिए। वहाँ मेरा उपहास करेंगे कि तू तो हारकर आई है। मार्कण्डेय ऋषि बोले कि गधियों की कैसी इज्जत? तू आज भी गधी है क्योंकि तू चौदह खसम करेगी यानि चौदह पुरूषों को पति बनाएगी। मरने के पश्चात् तो गधी बनेगी ही। उर्वशी शर्मिन्दा होकर चली गई।

इस प्रसंग से यह भी सिद्ध हुआ है कि काल ब्रह्म के लोक में तथा अक्षर पुरूष यानि परब्रह्म के लोक में कितनी ही लंबी आयु हो, अंत अवश्य है। मत्यु निश्चित है, परंतु सत्यलोक में ऐसा नहीं है। संत गरीबदास जी ने बताया है कि इतनी लंबी आयु के बाद भी यहाँ मत्यु होगी। आपको सत्यपुरूष की भक्ति बताने वाला तत्वदर्शी संत नहीं मिला। जिस कारण से जन्म-मत्यु का कष्ट झेल रहे हो।

गरीब, एती उम्र, बुलंद मरेगा अंत रे। सतगुरु लगे न कान, न भेटैं संत रे।।

स्वर्ग लोक से इन्द्र आया तथा कहने लगा कि हे बन्द निवाज! आप जीत गए हम हार गए। चलो इन्द्र की गद्दी प्राप्त करो। इस पर मार्कण्डेय ऋषि बोले- रे-रे इन्द्र क्या कह रहा है? इन्द्र का राज मेरे किस काम का। मैं तो ब्रह्म लोक की साधना कर रहा हूँ। वहाँ पर तेरे जैसे इन्द्र अलिलों (नील संख्या) में हैं उन्होंने मेरे चरण छुए। तू भी अनन्य मन से (नीचे की साधना - ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा देवी-देवताओं की आस्था त्यागकर एक प्रभु में आस्था को अनन्य मन कहते हैं) ब्रह्म की साधना कर ले। ब्रह्म लोक में साधक कल्पों तक मुक्त हो जाता है।

इन्द्र ने कहा ऋषि जी, फिर कभी देखेंगे। अब तो आनन्द करने दो। यहाँ विशेष विचारने की बात है कि इन्द्र जी को मालूम है कि इस क्षणिक स्वर्ग के राज का सुख भोग कर गधा बनुंगा। फिर भी मन व इन्द्रियों के वश हुआ विकारों के आनन्द को नहीं त्यागना चाहता। इसी प्रकार जो शराब पीता है उसे उत्तम मान कर त्यागना नहीं चाहता। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी अपनी पदवी को भोग कर मर जाएंगे और फिर चौरासी लाख योनियों को प्राप्त होगें। नई श्रेष्ठ आत्मा काल निरंजन के घर प्रकति (अष्टंगी) के उदर से जन्म लेती है तथा उन्हें फिर तीन लोक का राज्य दे देता है- ब्रह्मा को शरीर बनाना, विष्णु को स्थिति और शिव को संहार (प्रलय)। चूंकि काल (ब्रह्म) शापवश प्रतिदिन एक लाख (मनुष्य-देव-ऋषि) शरीर धारी प्राणी खाता है। उसके लिए इसके तीनों पुत्र व्यवस्था बनाए रखते हैं।

आदरणीय गरीबदास साहेब जी कह रहे हैं कि हे मूर्ख मन! असंख्यों जन्म हो गए इस काल लोक में कष्ट उठाते। अब जीवित मर ले। जीवित मरना है - न पथ्वी के राज की चाह, न स्वर्ग के राज की, न ब्रह्मा-विष्णु-शिव बनने की चाह, न शराब-तम्बाखू-सुल्फा, न अफीम, न माँस प्रयोग की इच्छा तथा तीन लोक व ब्रह्म लोक की साधना को त्याग कर उस पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म सतपुरुष) की साधना अनन्य (अव्याभिचारिणी) भक्ति करके सतलोक (सच्चखण्ड) चला जा। फिर तेरा जन्म-मरण सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण पवित्र गीता जी के अध्याय 13 में तथा रह-रह कर प्रत्येक अध्याय में दिया है।

फिर कहा है कि कोई पूर्ण संत (सतगुरु) मिले तो सही ज्ञान (जो गीता जी के अध्याय 13 पूरे में है) बता कर उत्तम साधना सतनाम तथा सारनाम दे कर पार करे। जहाँ (सतलोक में) चार मुक्ति जो ब्रह्म साधना की अंतिम उपलब्धि है वहाँ (सतलोक के) के स्थाई सुख के सामने तुच्छ है तथा माया (सर्व सुविधा देने वाली) वहाँ आम भक्त (हंस) की सेवक है। अर्थात् हर सुविधा तथा सुख चरणों में पड़ा रहता है। इन्द्र का स्वर्ग राज, सतलोक की तुलना में कौवे की बीट (टटी) के समान है। तथा मिले राम अविनाशी (परम अक्षर ब्रह्म) की प्राप्ति हो जाएगी। उसको प्राप्त करके पूर्ण मुक्त (परम गति को प्राप्त) हो जाएगा।

।। क्षेत्र (शरीर) क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) तथा क्षेत्री (परमात्मा-आत्मा सहित) को जानकर भक्त काल-जाल से मुक्त हो जाता है।।

अध्याय 13 के श्लोक 29 में कहा है कि जो कोई साधक सम्पूर्ण कर्मों को प्रकति के वश होकर किए जा रहे हैं ऐसे समझ लेता है व इस जीव को निर्दोष जानता है। फिर पूर्ण परमात्मा की साधना पूर्ण गुरु रूपी वकील करके मुकदमा लड़ कर पार होने की चेष्टा करता है।

अध्याय 13 के श्लोक 30 में कहा है कि जब (कोई साधक) सम्पूर्ण प्राणियों के भिन्न-2 भाव को तथा विस्तार (उत्पत्ति) को एक ही में स्थित देखता है तब वह उस पूर्ण परमात्मा (ततः ब्रह्म) को

प्राप्त हो जाता है। देखने का भाव है कि ज्ञान रूपी आँखों से मूल ज्ञान के आधार पर अपनी साधना बदल कर पूर्ण संत (गुरु) की शरण जा कर पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर जाता है। क्योंकि उसे काल (ब्रह्म) के जाल की पूर्ण जानकारी हो जाती है।

अध्याय 13 के श्लोक 31 में कहा है कि हे अर्जुन! अनादि (सदा एक रस तथा जिसकी उत्पत्ति कभी नहीं होती) होने से तथा निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा पूर्णब्रह्म शरीर में रहता हुआ भी न कुछ करता है तथा न लिप्त ही होता है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व अच्छे बुरे पदार्थों पर पड़ता है, परन्तु लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपनी निराकार शक्ति से सर्व कार्य करता हुआ स्वयं कुछ करता नजर नहीं आता।

अध्याय 13 श्लोक 31 का भाव है कि जैसे सूर्य दूरस्थ होने से भी जल के घड़े में दंष्टिगोचर होता है तथा निर्गुण शक्ति अर्थात् ताप प्रभावित करता रहता है, इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा अपने सत्यलोक में रहते हुए भी प्रत्येक आत्मा में प्रतिबिम्ब रूप से रहता है। जैसे अवतल लैंस पर सूर्य की किरणें अधिक ताप पैदा कर देती हैं तथा उत्तल लैंस पर अपना स्वाभाविक प्रभाव ही रखती हैं। इसी प्रकार शास्त्र विधि अनुसार साधक अवतल लैंस बन जाता है। जिससे ईश्वरीय शक्ति का अधिक लाभ प्राप्त करता है तथा शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वाला साधक केवल कर्म संस्कार ही प्राप्त करता है।

अध्याय 13 के श्लोक 32 में कहा है कि जैसे प्रकाश सब जगह पर व्याप्त है। फिर भी सूक्ष्म होने के कारण निर्लेप है। ऐसे ही शरीर में जीव आत्मा भी निर्लेप है। चूंकि परमात्मा में आत्मा ऐसे रहती है जैसे वायु में गंध। इसलिए दोनों ही शरीर में विद्यमान रहते हैं तथा आत्मा का गुण भी परमात्मा से मिलता जुलता है। शरीर में आत्मा जीव संज्ञा में है परंतु परमात्मा निर्लेप अर्थात् अविनाशी है।

अध्याय 13 के श्लोक 33 में कहा है कि हे अर्जुन! जिस प्रकार एक सूर्य इस सम्पूर्ण लोक (ब्रह्मण्ड) को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही पूर्ण परमात्मा (पूर्णब्रह्म) सम्पूर्ण क्षेत्र (ब्रह्मण्ड-पिंड) को प्रकाशित (शक्ति युक्त बनाता है जिससे यह पुतला चलता रहता है) करता है क्योंकि पिंड (शरीर/क्षेत्र) तथा ब्रह्मण्ड की रचना समान है जैसे एक आत्मा सर्व शरीर को शक्ति देती है ऐसे पूर्ण परमात्मा ब्रह्मण्ड को शक्ति देता है।

अध्याय 13 के श्लोक 34 में कहा है कि इस प्रकार क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म) के भेद को तत्व ज्ञान रूपी आँखों से अच्छी तरह जान लेता है। वे प्राणी प्रकति (काल की शक्ति सहयोगिनी-माया-अष्टंगी) से मुक्त होकर पूर्ण ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् काल जाल से निकल जाते हैं। परम शांति (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है। गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 1,2 में स्पष्ट है कि जो क्षेत्र (शरीर-पिण्ड) को जानता है वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी मुझे (काल को) ही जान। इसलिए अध्याय 13 के श्लोक 34 का भावार्थ है कि जो क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (काल) को जान लेता है वह पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है अर्थात् काल साधना त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना करके माया व काल के जाल से मुक्त हो जाते हैं।

❑❑❑